

जलवायु परिवर्तन और कोपनहेगन असहमति

डॉ. डी. बालसुब्रमण्यन

कोपनहेगन दरअसल लेखक हैंस क्रिस्टियन और उनकी कृति *लिटिल मर्मेड* के लिए मशहूर है। जब किसी ने पूछा कि कोपनहेगन किस चीज़ के लिए बदनाम है, तो किसी मुंहफट व्यक्ति ने कहा था, 'चर्च ऑफ अवर सेवियर' के लिए। इस चर्च की मीनार एक पेंच की शकल में बनी है। कहा जाता है कि जब इसके वास्तुकार ने देखा कि यह पेंच उल्टी दिशा में घूमा हुआ है (यानी एंटीक्लॉकवाइस है) तो उन्हें ऐसा सदमा लगा कि उन्होंने मीनार से कूदकर जान दे दी थी।

आज, कोपनहेगन तथाकथित 'कोपनहेगन सहमति' के लिए कुख्यात है। यह सहमति दो माह पूर्व कोपनहेगन में हुए जलवायु संकट सम्बंधी सम्मेलन में तैयार हुई थी। यह सहमति इतनी गलत है और इतने एकतरफा ढंग से विकसित अर्थ व्यवस्था वाले राष्ट्रों के पक्ष में झुकी हुई है कि इसे विकासशील राष्ट्रों ने स्वीकार नहीं किया। पश्चिमी देशों के नज़रिए की विकृतियां शुरू से ही उजागर हो गई थीं। सम्मेलन शुरू होने से पहले ही डेनमार्क ने एक मसौदा तैयार कर लिया था - *ए फ्रेमवर्क फॉर एक्शन*। इस फ्रेमवर्क में यह व्यवस्था थी कि पश्चिमी देश अपने 1990 के ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन में 30 प्रतिशत की नहीं बल्कि मात्र 3 प्रतिशत की कमी करेंगे। यह सुनकर अफ्रीकी देशों ने सम्मेलन का बहिष्कार करने का फैसला किया। परिणामस्वरूप वह मसौदा बस्ते से बाहर ही नहीं निकला।

मगर पश्चिमी देशों ने हाथ नहीं डाले। उन्होंने फ्रांस, यू.के. और अन्य देशों के नेतृत्व में एक ताज़ा समझौता तैयार करने के प्रयास किए। उन्होंने बेसिक (ब्राज़ील, भारत, दक्षिण अफ्रीका और चीन) से मांग की कि वे 2020 तक अपने उत्सर्जन में 20-25 प्रतिशत तक की कमी करें। और यदि वे ऐसा करेंगे तो पश्चिमी देश उन्हें करीब 130 अरब डॉलर की वित्तीय सहायता देंगे, जिसमें से 30 अरब डॉलर इसी वर्ष दे दी जाएगी।

यह सुनकर प्रशांत महासागर के द्वीप राष्ट्र तुवालू ने कहा: "यदि बाइबल की भाषा में कहें, तो हमें 30 चांदी के सिक्के देकर कहा जा रहा है कि हम अपना भविष्य बेच दें। हमारा भविष्य बिक्री की चीज़ नहीं है।" और वेनेज़ुएला ने कहा: "हमारे सिद्धांत बिक्री के लिए नहीं हैं। हमें उत्सर्जन लक्ष्यों के आंकड़े दीजिए, पैसा नहीं।" इस सहमति की बारीकियों को जानने के लिए निम्नलिखित वेबसाइट को देखें: <http://old.cseindia.org/equitywatch.asp>

कुछ तथ्यों पर गौर करें। वर्ष 1890 से आज तक सारे देशों द्वारा उत्सर्जित कार्बन डाईऑक्साइड की कुल मात्रा 1201 गिगाटन है। इसमें विकसित राष्ट्रों का योगदान 700 गिगाटन यानी 58 प्रतिशत है। अकेले अमरीका ने 333 गिगाटन (28 प्रतिशत) गैसों का उत्सर्जन किया है।

सारे विकासशील देशों ने कुल मिलाकर 501 गिगाटन (करीब 41 प्रतिशत) का योगदान दिया है। भारत का अंश 31 गिगाटन है जो कुल वैश्विक उत्सर्जन का करीब 3 प्रतिशत है। इसी अवधि में चीन ने 109 गिगाटन कार्बन डाईऑक्साइड का उत्सर्जन किया जो विश्व उत्सर्जन का 9 प्रतिशत है। दूसरे शब्दों में हमारे देश ने कुल 3 प्रतिशत का योगदान दिया है जबकि हमारे यहां दुनिया की 17 प्रतिशत आबादी निवास करती है। चीन की आबादी तो दुनिया की 20 प्रतिशत है मगर उसका कार्बन डाईऑक्साइड उत्सर्जन मात्र 9 प्रतिशत ही है। दूसरी ओर, दुनिया की आबादी का मात्र 4.5 प्रतिशत यू.एस. में है और उसका उत्सर्जन 28 प्रतिशत है।

तार्किक कदम तो ज़ाहिर हैं। 1970 के दशक में वैज्ञानिकों ने यह पता लगाया था कि कार्बन डाईऑक्साइड (और मीथेन) के उत्सर्जन से हमारी धरती एक ग्रीनहाउस में तब्दील हो रही है। इसका मतलब है कि सूरज से गर्मी यहां आती तो है मगर वह उतनी ही आसानी से वापिस अंतरिक्ष में नहीं बिखरती। जैसे-जैसे वायुमंडल में कार्बन डाईऑक्साइड

की मात्रा बढ़ती है, यह ग्रीनहाउस प्रभाव धरती को गर्म करता है और धरती का औसत तापमान बढ़ता जाता है। गणनाओं से पता चलता है कि 1890 (औद्योगिक क्रांति) के बाद से अब तक वैश्विक तापमान करीब 1 डिग्री सेल्सियस बढ़ चुका है।

यदि ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन में कटौती न की गई तो एक सदी में वैश्विक तापमान में 3.5 से 4 डिग्री सेल्सियस तक की वृद्धि होगी। और इसके परिणामस्वरूप ध्रुवों और ग्लेशियर्स का बर्फ पिघलेगा, समुद्र तल ऊपर उठेगा और मालदीव, श्रीलंका, इंडोनेशिया और माइक्रोनेशिया जैसे द्वीप-राष्ट्र खतरे से घिर जाएंगे। वास्तव में बांग्लादेश व अन्य कई देशों के तटीय इलाकों पर भी खतरा मंडराएगा।

खतरे स्पष्ट हैं और उनके संभावित समाधान भी। दुनिया भर के राष्ट्र 1992 से साल-दर-साल बैठकें करते आ रहे हैं ताकि इस समस्या को सुलझाने के उपाय खोज सकें और ऐसे कदम उठा सकें कि वैश्विक तपन 2 डिग्री सेल्सियस से ज़्यादा न बढ़ पाए।

जलवायु परिवर्तन सम्बंधी अंतर्राष्ट्रीय पैनल (आई.पी.सी.सी.) ने चेतावनी दी है कि उपरोक्त लक्ष्य को हासिल करने के लिए हमें 2050 तक कार्बन डाईऑक्साइड उत्सर्जन को 350 पीपीएम तक नीचे लाना होगा। तभी वैश्विक तापमान में वृद्धि को 2 डिग्री सेल्सियस से कम रखा जा सकेगा। इसके लिए औद्योगिक राष्ट्रों को 2020 तक यानी अगले दस वर्षों में कार्बन डाईऑक्साइड के अपने उत्सर्जन में 25-40 प्रतिशत तक कटौती करनी होगी।

इस चेतावनी के बावजूद, चाहे क्लिंटन हों, बुश हों या अब ओबामा हों, यू.एस. ने ऐसा करने से यह कहकर इन्कार किया है कि इससे उसकी अर्थ व्यवस्था बहुत आहत होगी। यही बात पश्चिमी युरोप के देश और ऑस्ट्रेलिया

ने भी दोहराई है। उनका कहना है कि वे 3 प्रतिशत की कटौती करेंगे। अलबत्ता, उन्होंने उभरती अर्थ व्यवस्थाओं, खासकर भारत व चीन पर निशाना साधा है।

पहले तो उन्होंने कहा था कि हमारे (भारत के) धान के खेत और मवेशी बहुत ज़्यादा मीथेन गैस पैदा करते हैं। वह तो सीएसआईआर के डॉ. ए.पी. मित्र (अब स्वर्गीय) ने अत्यंत सावधानीपूर्वक किए गए अध्ययनों से दर्शाया था कि यह सही नहीं है। तब पश्चिमी राष्ट्र कहने लगे कि हमारे यहां जलाऊ लकड़ी और चूल्हों में से बहुत अधिक कालिख पैदा होती है। और अब वे तोहमत लगा रहे हैं कि हमारी तेज़ी से बढ़ती अर्थ व्यवस्था इसके लिए ज़िम्मेदार है। वे यह भी कहते हैं कि हम अपनी अधिकांश ऊर्जा जीवाश्म ईंधन को जलाकर हासिल करते हैं, और वह भी दोषी है। गनीमत है कि अब तक उन्होंने हमारे 1.1 अरब लोगों को कटघरे में खड़ा नहीं किया है क्योंकि हममें से प्रत्येक व्यक्ति सांस के साथ कार्बन डाईऑक्साइड छोड़ता है।

गौरतलब है कि हाल ही में ऑस्ट्रेलिया ने चीन के साथ एक अनुबंध किया है जिसके तहत ऑस्ट्रेलिया चीन को अगले 20 वर्षों तक प्रति वर्ष 3 करोड़ टन कोयला सप्लाई करेगा ताकि चीन बिजली का उत्पादन कर सके। बाद में वे चीन को इसके लिए दोषी ठहराएंगे।

आगे क्या? भारत अभी भी टालमटोल कर रहा है। प्रधान मंत्री डॉ. सिंह ने कहा है कि भारत राष्ट्र संघ के जलवायु परिवर्तन सम्बंधी ढांचागत सम्मेलन में “लचीलेपन की भावना के साथ भाग लेगा और 2020 तक अपने उत्सर्जन में 20-25 प्रतिशत की कमी लाने के अपने वायदे को भी पूरा करेगा।” पता नहीं यह कैसे होगा - क्या हम विकसित राष्ट्रों की दादागिरी के आगे झुक गए हैं या हमारे पास कोई जादुई छड़ी है? (स्रोत फीचर्स)